41

जाति और भारतीय राजनीति

[THE CASTE AND INDIAN POLITICAL]

परम्परावादी भारतीय समाज में आधुनिक राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना भारतीय राजनीति की एक अद्भुत विशेषता है। भारत में राजनीतिक आधुनिकीकरण के प्रारम्भ होने के पश्चात् यह धारणा विकसित हुई कि पश्चिमी ढंग की राजनीतिक संस्थाएँ और लोकतन्त्रात्मक मूल्यों को अपनाने के फलस्वरूप पारम्परिक संस्था—**जातिवाद** का अन्त हो जायगा किन्तु स्वाधीनोत्तर भारत की राजनीति में जाति का प्रभाव अनवरत रूप से बढ़ता गया। जहाँ सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में जाति की शक्ति घटी है वहाँ राजनीति और प्रशासन पर इसके बढ़ते हुए प्रभाव को राजनीतिज्ञों, प्रशासनधिकारियों और केन्द्र एवं राज्य सरकारों ने स्वीकार किया है।

कतिपय विद्वानों की यह मान्यता है कि लोकतान्त्रिक एवं प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं की स्थापना के बाद जाति व्यवस्था का भारत में लोप हो जाना चाहिए। अन्य कुछ विद्वानों की धारणा थी कि जाति व्यवस्था परम्परागत शक्ति के रूप में कार्य करती है तथा राजनीतिक विकास एवं आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधक है। इस सम्बन्ध में रजनी कोठारी का अभिमत है कि—प्रथम कोई भी सामाजिक तन्त्र कभी पूर्णतया समाप्त नहीं हो सकता, अत. यह प्रश्न करना कि क्या भारत में जाति का लोप हो रहा है, अर्थशून्य है।[1] द्वितीय, जाति व्यवस्था आधुनिकीकरण और सामाजिक परिवर्तन में रुकावट नहीं डालती बल्कि इसको बढ़ाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।[2] स्थानीय और राज्य स्तर की राजनीति में जातीय संघ और समुदाय निर्णय प्रक्रिया को प्रभावित करने में उसी प्रकार की भूमिका अदा करते हैं जिस प्रकार पश्चिमी देशों में दबाव गुट (Pressure Groups)।[3] हमारे राजनीतिज्ञ एक अजीब असमंजस की स्थिति में हैं। जहाँ एक ओर वे जातिगत भेदभाव मिटाने की बात करते हैं वहीं दूसरी ओर जाति के आधार पर वोट बटोरने की कला में निपुणता हासिल करना चाहते हैं।[4]

जाति का परम्परागत अर्थ एवं रूप
(TRADITIONAL MEANING AND NATURE OF CASTE)

जाति प्रथा किसी न किसी रूप में संसार के हर कोने में पायी जाती है, पर एक गम्भीर सामाजिक कुरीति के रूप में यह हिन्दू समाज की ही विशेषता है। वैसे इस्लाम और ईसाई समाज

---

1 Rajni Kothari *Caste in Indian Politics* (Delhi, 1970), p. 4.

2 Rajni Kothari *Politics in India*, p. 341

3 Granvile Austin *The Indian Constitution—Cornerstone of a Nation* (Oxford, 1966), p 47.

4 "The politicians who want that caste and Communal ditinction should disappear is at the same time aware of its vote-catching power and is thus faced with a red dilemma.

भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं रह सके। यह व्यवस्था एक अतिप्राचीन व्यवस्था रही है। इसका अभिप्राय पेशे के आधार पर समाज को कई भागो मे बाँट देना है। सामान्यतया यह माना जाता है कि जाति प्रथा की उत्पत्ति वैदिक काल मे हुई। ब्राह्मण धार्मिक और वैदिक कार्यो का सम्पादन करते थे। क्षत्रियो का कार्य देश की रक्षा करना और शासन प्रवन्ध करना था। वैश्य कृषि और वाणिज्य सम्हालते थे तथा शूद्रो को अन्य तीन वर्णो की चाकरी करनी पड़ती थी। शुरू-शुरू मे जाति प्रथा के वन्धन कठोर न थे और वह जन्म पर नही अपितु कर्म पर आधारित थे। वाद मे जाति प्रथा में कठोरता आती गयी, वह पूरी तरह जन्म पर आधारित हो गयी तथा एक जाति से दूसरी जाति ने अन्त.क्रिया असम्भव हो गयी। अपने मौलिक रूप मे जाति प्रथा उपयोगी थी। चूँकि वह श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित थी, अत उसने आर्थिक क्षेत्र मे निपुणता के तत्त्व का समावेश किया। एक जाति का पेशा उसी जाति मे होता था। वेटा वाप से अपना पुश्तैनी पेशा सीखता था और प्राय. उसी को अपनी आजीविका के साधन के रूप मे अपना लेता था। इस प्रथा से एक जाति और विरादरी के लोगो मे भाई-चारे की भावना को वढाया। एक जाति के लोग एक-दूसरे से भली-भाँति परिचित होते थे तथा एक-दूसरे के सुख-दु ख मे काम आते थे।

प्रो. घुरिये (Ghurye) ने जाति व्यवस्था की छ. विशेषताएँ वतायी है, जो इस प्रकार है :

(i) भारत मे जाति ऐसे समुदाय है जिसका अपना विकसित जीवन है और इसकी सदस्यता जन्म से निश्चित होती है।

(ii) भारत का प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक स्थिति जानता है और जातियो के पद-सोपान मे वाह्मण सवसे ऊपर माना जाता है।

(iii) जातियो के आधार पर खान-पान और सामाजिक आदान-प्रदान के प्रतिवन्ध लगे रहते है।

(iv) गाँवो तथा शहरो मे जाति के आधार पर पृथकता की भावना वनी रहती है।

(v) कुछ जातियाँ कतिपय विशेष प्रकार के व्यवसायो को अपना पुश्तैनी अधिकार समझती हैं।

(vi) जातियो की परिधि मे ही वैवाहिक आदान-प्रदान होता है और जातियाँ कई उप-जातियो मे विभक्त होती हैं। उप-जातियो मे भी वैवाहिक परिसीमाएँ है।

जाति का राजनीति से सम्पर्क सूत्र
(POLITICS ATTACHED TO CASTE)

स्वाधीनता संग्राम के दौरान ऐसा दीखता था कि जनता पर जातिवाद का प्रभाव कम हो रहा है किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त जातिवाद ने फिर जोर पकड़ा और वयस्क मताधिकार व्यवस्था के देश मे लागू कर दिये जाने के परिणामस्वरूप यह एक राजनीतिक शक्ति के रूप मे उदित हुआ है। वैसे राजनीति पर जातिगत प्रभाव प्रतिनिधि व्यवस्था के लागू होने के समय से ही शुरू हो गया था किन्तु यह प्रभाव नगण्य ही था। इसके लिए उत्तरदायी थे ब्रिटिश प्रशासन, राष्ट्रीय आन्दोलन तथा सीमित मताधिकार। स्वतन्त्रता की प्राप्ति ने प्रथम दो कारणो का निराकरण कर दिया और नये संविधान मे अपनायी गयी वयस्क मताधिकार व्यवस्था ने तीसरे का। फलत: जातियो के प्रभाव क्षेत्र मे आशातीत वृद्धि हो गयी। आरम्भ मे तो सामाजिक अथवा आर्थिक दृष्टि से उच्च अथवा श्रेष्ठ जातियाँ ही राजनीति से प्रभावित रही और राजनीतिक लाभ उन्ही तक सीमित रहे। समय के साथ-साथ मध्यम और निम्न समझी जाने वाली जातियाँ आगे आने लगी और अपने राजनीतिक प्रभाव को वढाने मे प्रयत्नशील रहने लगी। **प्रो. रूडोल्फ** के

शब्दो मे, "भारत के राजनीतिक लोकतन्त्र के सन्दर्भ मे जाति वह धुरी है जिसके माध्यम से नवीन मूल्यो और तरीको की खोज की जा रही है। यथार्थ मे यह एक ऐसा माध्यम बन गयी है कि इसके जरिये भारतीय जनता को लोकतान्त्रिक राजनीति की प्रक्रिया से जोड़ा जा सकता है।"[1]

जाति का राजनीतिक रूप : रजनी कोठारी का दृष्टिकोण
(POLITICAL DIMENSIONS OF CASTE . RAJNI KOTHARI'S APPROACH)

प्रो. रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक 'कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स' (Caste in Indian Politics) मे भारतीय राजनीति मे जाति की भूमिका का विस्तृत विश्लेषण किया है। उनका मत है कि अक्सर यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या भारत मे जाति प्रथा खत्म हो रही है ? इस प्रश्न के पीछे यह धारणा है कि मानो जाति और राजनीति परस्पर विरोधी संस्थाएँ हैं। ज्यादा सही सवाल यह होगा कि जाति-प्रथा पर राजनीति का क्या प्रभाव पड रहा है और जाति-पाँति वाले समाज मे राजनीति क्या रूप ले रही है ? जो लोग राजनीति मे जातिवाद की शिकायत करते हैं, वे न तो राजनीति के प्रकृत स्वरूप को ठीक समझ पाये हैं और न जाति के स्वरूप को। भारत की जनता जातियो के आधार पर सगठित है अत न चाहते हुए भी राजनीति को जाति संस्था का उपयोग करना ही पडेगा। अत. राजनीति मे जातिवाद का अर्थ जाति का राजनीतिकरण है। जाति को अपने दायरे मे खीचकर राजनीति उसे अपने काम मे लाने का प्रयत्न करती है। दूसरी ओर राजनीति द्वारा जाति या बिरादरी को देश की व्यवस्था मे भाग लेने का मौका मिलता है।[2] राजनीतिक नेता सत्ता प्राप्त करने के लिए जातीय सगठन का उपयोग करते हैं और जातियो के रूप मे उनको बना-बनाया सगठन मिल जाता है जिससे राजनीतिक सगठन में आसानी होती है।

जाति व्यवस्था और राजनीति मे अन्त क्रिया के सन्दर्भ मे प्रो. रजनी कोठारी ने जाति-प्रथा के तीन रूप प्रस्तुत किये है . (1) लौकिक रूप (The secular aspect), (ii) एकीकरण का रूप (The integration aspect), तथा (iii) चैतन्य रूप (The aspect of consciousness)।

(1) **जाति व्यवस्था का लौकिक रूप**—रजनी कोठारी ने जाति व्यवस्था के लौकिक रूप को व्यापक दृष्टि मे देखने का प्रयत्न किया। जाति व्यवस्था की कुछ बातो पर सबका ध्यान गया है जैसे जाति के अन्दर विवाह, छुआछूत और रीति-रिवाजो के द्वारा जाति की पृथक् इकाई को कायम रखने का प्रयत्न। लेकिन इस बात की ओर बहुत ही कम लोगो का ध्यान गया है कि जातियो मे आपसी प्रतिद्वन्द्विता एवं गुटबन्दी रहती है, प्रत्येक जाति प्रतिष्ठा और सत्ता की प्राप्ति के लिए संघर्परत रहती है। उदाहरण के लिए, आजकल बिहार मे ऊँची जातियो और पिछडी जातियो के बीच सत्ता प्राप्ति का अनवरत संघर्ष चल रहा है और यही कारण है कि जनता शासन के दौरान दोनो ही मुख्यमन्त्री पिछडी और अनुसूचित जातियो से आये। जाति व्यवस्था के इस लौकिक पक्ष के दो रूप थे—एक शासकीय रूप यानि जाति की ओर गाँव की पचायत और चौधराहट। दूसरा रूप राजनीतिक था यानि जाति की आन्तरिक गुटबन्दी और अन्य जातियों से

1 "With the new context of Political democracy caste remains a central element of India's society while adopting itself to the values and methods of democratic politics. Indeed it has become one of the chief means by which the Indian mass has been attached to the process of democratic politics " —*Rudolphs*

2 "By drawing the caste system into its web of organisation, politics finds material for its articulation and moulds it into its one design In making politics their sphere of activity, Caste and Kin groups on the other hand, get a chance to assert their identity andto strive for position " —Rajni Kothari . *Politics in India*, 1970, p. 225.

गठजोड और प्रतिद्वन्द्विता । इन. संगठनो का प्रभाव इस वात पर निर्भर करता था कि स्थानीय नेताओ के समाज की केन्द्रस्थ सत्ता से किस प्रकार के सम्वन्ध थे । धर्म, व्यवसाय और प्रदेश के आधार पर इन जातियों की स्थिति वनती और विगड़ती थी । पहले इन जातियो का सम्वन्ध जाति या गाँव की पंचायत और राजा या जमीदार से रहता था । अव जातीय पंचायतो के स्थान पर विधानसभाएँ और संसद हैं तथा राजा के स्थान पर राष्ट्रीय सरकार है ।

रजनी कोठारी का यह भी विचार है कि देश की राजनीति पर किसी एक जाति का प्राधान्य नही हो सका क्योकि कुछ स्थानो पर ब्राह्मणो का वर्चस्व था तो कुछ प्रदेशो मे जैसे गुजरात और मारवाड़ मे जैन, वैष्णव जैसे सम्प्रदायों के हाथ मे आर्थिक शक्ति थी ।

(ii) **जाति व्यवस्था का एकीकरण रूप**—जाति का दूसरा रूप एकीकरण का है अर्थात् व्यक्ति को समाज से वाँधने का है । जाति प्रथा जन्म के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति का समाज मे स्थान नियत कर देती है । जाति के आधार पर ही उस व्यक्ति का व्यवसाय और आर्थिक भूमिका निश्चित हो जाती है । चाहे कितना भी वड़ा व्यक्ति क्यो न हो, उसका अपने समाज मे लगाव पैदा हो जाता है, जाति के प्रति उसकी निष्ठा वढने लगती है । यही निष्ठा आगे चलकर वड़ी निष्ठाओ अर्थात् लोकतन्त्र और राजनीतिक व्यवस्था के प्रति भी विकसित हो सकती है । इस प्रकार जातियाँ जोड़ने वाली कड़ियाँ वन जाती है । लोकतन्त्र के अन्दर विभिन्न समूहो मे शक्ति के लिए प्रतिद्वन्द्विता होती है और विभिन्न जातियो ने आपस मे मिल-जुलकर गठजोड वनाने की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है ताकि वे सत्ता का लाभ प्राप्त कर सकें ।

(iii) **जाति व्यवस्था का चैतन्य रूप**—जाति प्रथा का तीसरा रूप चेतना वोध है । कुछ जातियाँ अपने को उच्च समझती हैं और इस कारण समाज मे उनकी विशेष प्रतिष्ठा होती है । इस कारण कुछ निम्न समझी जाने वाली जातियाँ भी अपने को उनके साथ जोड़ने की चेष्टा करती हैं । क्षत्रिय वर्ण के साथ जो प्रतिष्ठा जुड़ी हुई है, उसके कारण देश के विभिन्न भागो मे अनेक जातियों ने इस वर्ण का दावा किया है । कुछ जातियो मे इसी प्रकार ब्राह्मण पद का भी दावा किया है । राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति मे परिवर्तन के परिणामस्वरूप जाति विशेष की स्थिति भी वदलती है । सामाजिक व्यवहार मे अलग-अलग स्तर पर अलग-अलग रूप धारण करने के कारण जाति व्यवस्था मे लोच और परिवर्तनशीलता आ जाती है । इसके लिए चार मार्ग अपनाये जाते हैं । **प्रथम**, संस्कृतिकरण का तरीका है । संस्कृतिकरण मे छोटी जातियाँ सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणो के रीति-रिवाजों की नकल करने लगती हैं । इसे ब्राह्मणीकरण भी कहा जाता है । **द्वितीय**, लौकिकीकरण या अब्राह्मणीकरण का तरीका है । आर्थिक उन्नति, राजनीतिक एकता और वुद्धिवाद की सार्वजनिक प्रवृत्तियो के प्रभाव से अक्सर अब्राह्मण जातियाँ ब्राह्मणो की नकल करने की प्रवृत्ति को छोड देती है और अन्य अब्राह्मण जातियो से मिलकर राजनीतिक व सामाजिक अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा करती हैं । **तृतीय**, महापुरुषो से सम्वन्ध जोड़ने का तरीका है । कभी-कभी कतिपय जातियाँ अपनी उच्चता सिद्ध करने के लिए अपना सम्वन्ध पौराणिक पुरुषो से जोड़ने का प्रयत्न करती हैं । जैसे गुजरात के पाटीदार, वंगाल के महाष्यि और राजस्थान के जाट आदि । **चतुर्थ**, आधुनिक राजनीति मे भी भागीदारी का तरीका है । कुछ जातियाँ सीधे ही आधुनिक राजनीति मे भाग लेने लगी और इस प्रकार उन्होंने समाज मे भी उच्च स्थिति प्राप्त की । आन्ध्र प्रदेश और विहार इसके उदाहरण हैं ।

प्रो. रजनी कोठारी ने जाति के राजनीतिकरण की चर्चा करते हुए कहा है कि 'इससे पुराना समाज नयी राजनीतिक व्यवस्था के करीव आया है ।' इस प्रक्रिया को उन्होंने तीन चरणो में वाँटा है .

(i) **शक्ति और प्रभाव की प्रतिस्पर्द्धा—ऊँची जातियो तक सीमित रही**—भारत का पुराना समाज जब नयी व्यवस्था के सम्पर्क मे आने लगा तो सबसे पहले शक्ति और प्रभाव की स्पर्द्धा समाज की प्रतिष्ठित और जमी हुई जातियो तक सीमित रही। जिन जातियों ने उच्च शिक्षा प्राप्त करके आधुनिक बनने का प्रयत्न किया, वे प्रतिष्ठित जातियो के समक्ष आने लगी। इन जातियो ने अधिकार और पद प्राप्त करने के लिए अपना राजनीतिक सगठन बनाया जिससे दो ऊँची जातियो मे प्रतिस्पर्द्धा और प्रतिद्वन्द्विता बढने लगी। मद्रास और महाराष्ट्र मे ब्राह्मण-अब्राह्मण; राजस्थान मे राजपूत जाट, गुजरात मे बनिया-ब्राह्मण-पाटीदार, आन्ध्र प्रदेश मे कम्मा-रेड्डी और केरल मे इजवा-नायर द्वन्द्व इसके उदाहरण है।

(ii) **जाति के अन्दर की प्रतिस्पर्द्धी गुटबन्दी**—इस चरण मे भिन्न-भिन्न जातियो की प्रतिस्पर्द्धा के साथ-साथ जाति के अन्दर भी प्रतिस्पर्द्धी गुट बन जाते हैं। प्रतिद्वन्द्वी नेताओ के पीछे गुट बन जाते है। इन गुटो मे विभिन्न जातियों के लोग होते हैं। अपना गुट मजबूत करने के लिए उन जातियो की भी सहायता ली जाती है, जो अब तक दायरे से बाहर थीं। चुनाव मे समर्थन प्राप्त करने के लिए नीची जातियो के प्रमुख लोगो को छोटे राजनीतिक पद और लाभ मे कुछ हिस्सा देकर प्रतिस्पर्द्धी नेता अपना गुट मजबूत करने का प्रयत्न करते हैं। जहाँ इस प्रकार मुखियो को इनाम और पद देकर इन जातियो का समर्थन प्राप्त करना सम्भव नहीं हुआ, वहाँ विभिन्न जातियो और उपजातियो मे आपसी प्रतिस्पर्द्धा पैदा करके उनका संगठन बनाने की और उन संगठनो के मध्यस्थ या बिचवइयो द्वारा समझौता करने की कोशिश की गयी। इस चरण मे पुराने ब्राह्मण और कायस्थ आदि प्रशासनिक जातियो के नेताओ के बजाय व्यवसायी और कृषक जातियो के नेताओ और कार्यकर्त्ताओ की सख्या बढी। ये नेता सौदा पटाने मे कुशल थे, ज्यादा व्यावहारिक थे और अपने वर्ग और जाति के लोगो का नेतृत्व कर सकते थे।

(iii) **जाति के बन्धन ढीले पड़ना और राजनीति को व्यापकता मिलना**—रजनी कोठारी के अनुसार तीसरे चरण मे एक ओर राजनीतिक मूल्यो की प्रधानता हुई और जाति-पाँति से लगाव कम हुआ, वहाँ दूसरी ओर शिक्षा, नये शिल्प और शहरीकरण के कारण समाज मे परिवर्तन आया। भौतिक उन्नति की नयी धारणाओ का जोर बढा। पुराने पारिवारिक बन्धन टूटने लगे और लोग काम-धन्धे के लिए शहरो मे जाकर बसने लगे। जाति की भावना ढीली पड़ने लगी और सामाजिक व्यवहार अपनी जाति तक सीमित न रहा। राजनीति मे भी व्यापकता आयी। नयी शिक्षा और नये सामाजिक व्यवहार से उत्पन्न होने वाली नयी प्रवृत्तियाँ फैलने लगी। राजनीतिक संस्थाओ का ढाँचा व्यापक होने लगा और जाति की भावना को नया रूप मिलने लगा। राजनीतिक प्रवृत्तियो ने नयी निष्ठाओ को जन्म दिया, जो पुरानी निष्ठाओं को काटती हैं। जाति अब राजनीतिक समर्थन या शक्ति का एकमात्र आधार नही रही, यद्यपि राजनीति मे इसका अधिकाधिक उपयोग किया जा रहा है।

प्रो. रजनी कोठारी का राजनीति मे जाति सम्बन्धी निष्कर्ष इस प्रकार है :

(1) आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था मे भाग लेने के कारण पहले तो जाति प्रथा पर पृथक्ता की प्रवृत्ति का प्रभाव पडा, बाद मे जाति भावना का सामजस्य हुआ और इसने राजनीतिक सगठन में सहायता दी।

(2) आधुनिक राजनीति मे भाग लेने से लोगो की दृष्टि मे परिवर्तन हुआ और उनकी यह समझ मे आ गया कि आज के युग मे केवल जाति और सम्प्रदाय से काम नही चल सकता।

(3) जहाँ जाति बडी होती है, वहाँ भी उसमे एकता नही रहती, उसमे उप-जातियो के भेद होते है और छोटी जातियाँ तो अपने बल पर चुनाव भी नही जीत सकती हैं। यदि कोई

प्रत्याशी अपनी ही जाति का पक्ष लेता है तो दूसरी जातियाँ उनके खिलाफ हो जाती है इसलिए चुनाव की राजनीति मे अनेक जातियो का गुट बनाना पडता है ।

(4) राजनीति मे आने के कारण जाति की भावना ढीली पड जाती है और अनेक नयी निष्ठाओं का उदय होता है ।

(5) आजकल राजनीति मे जातिवाद और सम्प्रदायवाद का जोर बढने की शिकायत की जाती है। ऐसा समझा जाता है कि शिक्षा प्रसार, शहरो के विस्तार औद्योगीकरण के कारण सम्प्रदाय और जाति के बन्धन ढीले पड रहे थे, वे चुनाव की राजनीति के कारण फिर से जोर पकड रहे है और इससे देश मे फूट बढ़ेगी जिसमे धर्मनिरपेक्ष लोकतन्त्र का ढाँचा खतरे मे पड जायेगा । किन्तु प्रो. कोठारी का मानना है कि वास्तव मे जाति और राजनीति के मिश्रण से दूसरे ही परिणाम निकलते है । बजाय राजनीति पर जाति के हावी होने के, जाति का राजनीतिकरण हो जाता है । (It is not Politics that gets caste ridden, it is caste that gets Politicisation) राजनीति ने जाति को लीक से हटाकर नया सन्दर्भ दे दिया, जिससे उसका पुराना रूप बदल रहा है ।

(6) आधुनिकतावादी नेता जाति-पाँति पर भले ही नाक-भौ सिकोडे, परन्तु इसके द्वारा राजनीतिक शक्ति उन वर्गो या समूहो के हाथ मे पहुँच सकी, जो अब तक उससे वचित थे ।

(7) जाति के आधार पर संघ और सगठन बनते है जैसे कायस्थ सभा, क्षत्रिय संघ आदि सब मिलाकर जातीय सगठनो ने भारत की राजनीति मे वही भाग लिया है जो पश्चिमी देशो मे विभिन्न हितो व वर्गो के संगठनो ने ।

(8) जातियो और सम्प्रदायो के राजनीति मे भाग लेने के फलस्वरूप सामूहिक या राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ है और उनकी पृथकता कम होकर उनका राजनीतिक एकीकरण हुआ है ।

जाति और राजनीति में अन्तःक्रिया : सैद्धान्तिक आधार
(INTERACTIONS BETWEEN CASTE AND POLITICS . THEORETICAL FRAMEWORK)

भारत मे जाति और राजनीति मे किस प्रकार का सम्बन्ध है ? इस सम्बन्ध मे चार प्रकार से विचार प्रस्तुत किये जा रहे है :

सर्वप्रथम, यह कहा जाता है कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था का सगठन जाति की संरचना के आधार पर हुआ है और राजनीति केवल सामाजिक सम्बन्धो की अभिव्यक्ति मात्र है। सामाजिक सगठन राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप निर्धारित करता है ।

द्वितीय, राजनीति के प्रभाव के फलस्वरूप जाति नया रूप धारण कर रही है । लोकतान्त्रिक राजनीति के अन्तर्गत राजनीति की प्रक्रिया प्रचलित जातीय संरचनाओं को इस प्रकार प्रयोग मे लाती है जिससे सम्बद्ध पक्ष अपने लिए समर्थन जुटा सके तथा अपनी स्थिति को सुदृढ़ बना सकें । जिस समाज मे जाति को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संगठन माना जाता है उसमे यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि राजनीति इस सगठन के माध्यम से अपने आपको सगठित करने का प्रयास करे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जिसे हम राजनीति मे जातिवाद के नाम से पुकारते हैं वह वास्तव मे जाति का राजनीतिकरण है ।

तृतीय, भारत मे राजनीति 'जाति' के इर्द-गिर्द घूमती है । जाति प्रमुखतम राजनीतिक दल है। यदि मनुष्य राजनीति की दुनिया मे ऊँचा उठना चाहता है तो उसे अपने साथ अपनी जाति को लेकर चलना होगा । भारत में राजनीतिज्ञ जातीय समुदायो को इसलिए संगठित करते है ताकि उनके समर्थन मे उन्हें सत्ता तक पहुँचने मे सहायता मिल सके ।

चतुर्थ, जातियाँ संगठित होकर प्रत्यक्ष रूप से राजनीति मे भाग लेती हैं और इस प्रकार जातिगत भारतीय समाज मे जातियाँ ही 'राजनीतिक शक्तियाँ' बन गयी हैं।

जाति के राजनीतिकरण की विशेषताएँ
(CHARACTERISTICS OF CASTE POLITICISATION)

भारतीय राजनीति मे जाति की भूमिका की उभरती विशेषताएँ निम्नवत् हैं :

प्रथम, जाति व्यक्ति को बाँधने वाली कड़ी है। जातीय संघो और जातीय पंचायतो ने जातिगत राजनीतिक महत्त्वाकाक्षाओं को बढाया है। जाति-पाँति को समाप्त करने वाले आन्दोलन अन्ततोगत्वा नयी जातियो के रूप मे मुखरित हुए जैसे लिंगायत, कबीरपन्थी और सिक्ख आन्दोलन स्वयं नयी जातियाँ बन गये।

द्वितीय, शिक्षा, शहरीकरण, औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण से जातियाँ समाप्त नही हुई अपितु उनमे एकीकरण की प्रवृत्ति को बल मिला और उनकी राजनीतिक भूमिका मे वृद्धि हुई।

तृतीय, राजनीति मे प्रधान जाति (Dominant caste) की भूमिका का विश्लेषण किया जा सकता है। प्रधान जाति न केवल राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से ही शक्तिशाली होती है, बल्कि संख्या मे भी गाँव या इलाके मे ज्यादा होती है। प्रधान जाति अपने सख्या बल के आधार पर गाँव और क्षेत्र की स्थानीय सस्थाओं जैसे पंचायतो की राजनीति मे सक्रिय होती है। यदि किसी राज्य विशेष मे किसी जाति की प्रधानता होती है तो राज्य राजनीति मे जाति एक प्रभावक तत्त्व बन जाती है। हरियाणा की राजनीति के बारे मे डॉ सुभाष काश्यप ने लिखा है—"हरियाणा मे जाति और वर्ग की भावना को अपेक्षाकृत अधिक बल मिला है तथा हरियाणा के जन-जीवन मे सदा ही 'जाति' राजनीतिक दल की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण रही है। गुडगाँव और महेन्द्रगढ क्षेत्रो के अहीर, अहीर उम्मीदवार को ही मत देना चाहेगा अन्य किसी को नही यही बात राज्य के अन्य भागो के अन्य जाति के समूहो के बारे मे लागू होती है। चुनावो के समय यहाँ अक्सर एक पुरजोर नारा सुनायी पडता है—'जाट की बेटी जाट को, जाट का वोट जाट को।' आश्चर्य की बात यह है कि जाति की यह छूत हिन्दुओ तक ही सीमित नहीं, मुसलमान भी उनकी गिरफ्त से नहीं बच सके।"[1]

चतुर्थ, उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे ही जातिगत समुदायो का झुकाव राजनीति की ओर हो गया था जबकि ब्रिटिश शासन ने भारत मे एक मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था की नीव डाली थी। सबसे पहले इसका ध्यान जनगणना कार्यालय की ओर गया जहाँ जातीय समुदायो ने सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्ति के ध्येय से अपने सगठन का नामकरण कराना आवश्यक समझा। बाद मे अपनी जाति के लोगो के हितो को संरक्षण के लिए जातीय संघो ने प्रस्ताव पारित किये और शासन को अपनी माँगो के लिए प्रभावित करना प्रारम्भ किया। यहाँ तक कि कुछ जातियो ने शैक्षणिक सुविधा, शिक्षण संस्थाओ मे जातिगत आरक्षण और सरकारी नौकरियो मे आरक्षण की माँग की। मद्रास की वेनियर (Vennıyars) जाति के नेता पदायची (Padayachı) ने सी. राजगोपालचारी के मन्त्रिमण्डल मे शामिल होने से इंकार कर दिया क्योकि उन्होने उनकी जातीय माँगो को मानने से इकार कर दिया था। बाद मे वे कामराज मन्त्रिमण्डल मे शामिल हो गये क्योकि उन्होने वेनियरो की माँगें स्वीकार कर ली थी।

पंचम, निर्वाचनो के दिनो मे जातिगत समुदाय प्रस्ताव पारित करके राजनीतिक नेताओ और दलो को अपने जातिगत समर्थन की घोषणा करके अपने हितो को मुखरित करते है।

---

1 डॉ. सुभाष काश्यप . **दल-बदल और राज्यों की राजनीति** (मेरठ, 1970), पृ. 112-13।

षष्ठ, जाति की भूमिका राष्ट्रीय स्तर की राजनीति पर उतनी नहीं है जितनी स्थानीय और राज्य राजनीति पर है।[1]

सप्तम, जाति और राजनीति के सम्बन्ध स्थैतिक न होकर गतिशील है।[2]

जाति के राजनीतिकरण का विवेचन
(CASTE POLITICISATION · ANALYSIS)

जातिवाद का एक पक्ष यह है कि यदि कुछ जातियाँ या जाति के लोग मिलकर कोई रचनात्मक कार्य जैसे स्कूल या कॉलेज खोलना, अस्पताल, धर्मशालाएँ, मन्दिर, गुरुद्वारे आदि बनवाना, निर्धनों को आर्थिक सहायता देना आदि करते हैं तो उससे न तो किसी को हैरानी या परेशानी होगी और न कोई विद्वेष की भावना ही फैलती है। किन्तु जब कुछ जातियाँ या जाति के लोग मिलकर अन्य जाति को परेशान अथवा संत्रस्त करते है तो स्थिति भयावह अवश्य बन जाती है। आजकल प्राय. यही हो रहा है। अच्छे प्रतिभाशाली लोग केवल इसी आधार पर उपेक्षित रहते हैं कि वे किसी जाति विशेष के नही होते। जातियो के नाम से चलने वाली सस्था मे से बहुत ही कम ऐसी होती है जो पक्षपात शून्य होती हैं, बाकी सभी मे यह विष इस प्रकार घोला जाता है कि अच्छी प्रतिभाओ का विकास रुक जाता है। जातिवाद अथवा भारत मे जातियो का होना यदि वास्तव मे एक सामाजिक बुराई है तो उसे अभी दूर क्यो नही किया गया? छुआछूत मिटाने के लिए यदि कानून बन सकता है तो जाति प्रथा को समाप्त करने के लिए अभी तक कानून क्यो नही बना? यह सहज ही शंका का विषय बन जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे राजनीतिज्ञ ऊपर से 'जाति तोडो' सम्मेलन करते हैं किन्तु अन्तरंग से जातीयता को बढावा देते है। जातिवाद के कारण अनेक ऐसे सघ बन गये है जिनमे काफी पिछडे वर्ग के लोग शामिल हैं। शोषित संघ तो अनुसूचित जातियो अथवा अनुसूचित आदिम जातियो का एक संघ है ही। इधर एक नाम 'दलित पैंथर' भी सुनाई पडने लगा है। दलित का अर्थ है रौंदा, कुचला अथवा संत्रस्त। जबकि पैंथर अंग्रेजी का शब्द है जो चीता अथवा तेंदुआ के लिए प्रयुक्त होता है। यह संगठन उग्रवादी अनुसूचित जातियो व आदिवासियो का सगठन है जो मूल रूप से जातीय आधार पर संगठित किया गया है। इसी प्रकार जाटों, गूजरो, अहीरो, वैश्यो आदि के भी अनेक संगठन हैं जिनका मुख्य आधार जाति ही है। ब्राह्मणो के कई वर्ग हैं। कान्यकुब्ज, गौड़, मैथिल, दक्षिणात्य आदि। इनकी भी अनेक सभाएँ व संगठन है जो भारतीय व प्रादेशिक आधार पर बनाये गये है—जैसे अखिल भारतीय कान्य कुब्ज सभा, अखिल भारतीय ब्राह्मण सभा आदि। इन सभाओ का मूल ध्येय जातीय भावनाओ को उकसाना है। जातीय संगठन और जातीय नेता राजनीतिक दलो और राजनीतिज्ञों से साँठ-गाँठ करके जाति का राजनीतिकरण करने मे लगे हुए है। बिहार और उत्तर प्रदेश मे आये दिन जातीय झगडो, तनावो और संघर्षो मे जाति और राजनीति की अन्त:क्रिया ही दिखायी देती है।

भारतीय राजनीति में 'जाति' की भूमिका
(ROLE OF 'CASTE' IN INDIAN POLITICS)

जयप्रकाश नारायण ने एक बार कहा था कि 'जाति भारत मे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण दल है।' **हेरल्ड गौल्ड** के शब्दों मे, 'राजनीति का आधार होने के बजाय जाति उसको प्रभावित करने वाला एक तत्त्व है।'

---

1 "Caste plays a major role in state and local politics but it is marginal at the all India level." —Michael Brecher : *Succession in India* (London), p. 230.

2 J C. Johari, *Reflection on Indian Politics* (New Delhi 1974), p. 71.

जाति-व्यवस्था भारतीय समाज का परम्परागत पक्ष है। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात संविधान और राजनीतिक संस्थाओ के निर्माण से आधुनिक प्रभावो ने भारतीय समाज मे धीरे-धीरे प्रवेश करना आरम्भ कर दिया। आधुनिक प्रभावो के फलस्वरूप वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचन प्रारम्भ हुए और जातिगत सस्थाएँ यकायक महत्त्वपूर्ण बन गयी क्योकि उनके पास भारी संख्या मे मत थे और लोकतन्त्र मे सत्ता प्राप्ति हेतु इन मतों का मूल्य था। जिन्हे सत्ता की आकाक्षा थी उन्हे सामान्य जनता के पास पहुँचने के लिए सम्पर्क सूत्र की भी आवश्यकता थी। सामान्य जनता को अपने पक्ष मे मिलाने के लिए यह भी जरूरी था कि उनसे उस भाषा मे बात की जाय जो उनकी समझ मे आ सके। जाति-व्यवस्था इस बात को प्रकट करती थी। इस पृष्ठभूमि मे जाति की भूमिका राजनीति मे अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण होती गयी। भारतीय राजनीति मे 'जाति' की भूमिका का अध्ययन निम्न शीर्षको मे किया जा सकता है

(1) **निर्णय प्रक्रिया में जाति की प्रभावक भूमिका** (Influential Role of Caste in Decision-making Process)—भारत मे जातियाँ सगठित होकर राजनीतिक और प्रशासनिक निर्णय की प्रक्रिया को प्रभावित करती है। उदाहरणार्थ, सविधान मे अनुसूचित जातियो और जन-जातियो के लिए आरक्षण के प्रावधान रखे गये है जिनके कारण ये जातियाँ सगठित होकर सरकार पर दबाव डालती है कि इन सुविधाओ को और अधिक वर्षो के लिए अर्थात् जनवरी 2000 तक के लिए बढा दिया जाय। अन्य जातियाँ चाहती है कि आरक्षण समाप्त किया जाय अथवा इसका आधार सामाजिक-आर्थिक स्थिति हो अथवा उन्हे आरक्षित सूची मे शामिल किया जाय ताकि वे इसके लाभ से वजित न रह जायँ।

(2) **राजनीतिक दलो में जातिगत आधार पर निर्णय** (Caste-oriented decisions at the level of Political Parties)—भारत मे सभी राजनीतिक दल अपने प्रत्याशियो का चयन करते समय जातिगत आधार पर निर्णय लेते हैं। प्रत्येक दल किसी भी चुनाव क्षेत्र मे प्रत्याशी मनोनीत करते समय जातिगत गणित का अवश्य विश्लेषण करते हैं। 1962 मे गुजरात के चुनाव मे स्वतन्त्र पार्टी की सफलता का राज उसका क्षत्रिय जाति के समर्थन मे छिपा हुआ था। हरिजन-मुसलमान-ब्राह्मण शक्तिपुंज बनाकर ही 1971 का आम चुनाव काग्रेस ने जीता था। 1977 मे जनता पार्टी की विजय का कारण उसे मुसलमानो और हरिजनो के साथ उच्च जातियो का प्राप्त समर्थन था। जनवरी 1980 के सप्तम लोकसभा चुनावो मे काग्रेस (इन्दिरा) की विजय का कारण है कि श्रीमती गाँधी हरिजनो, ब्राह्मणो और मुसलमानो का जातीय समर्थन जुटाने मे सफल हो गयी।[1] नवम्बर 1989 के लोकसभा चुनावो मे उत्तर प्रदेश और विहार मे जनता दल की अपूर्व विजय का एक कारण जाट-राजपूत समर्थन है। उत्तर प्रदेश मे बहुजन समाज पार्टी का उदय और आधार कतिपय पिछडी जातियो के समर्थन पर निर्भर है। काग्रेस सहित सभी राज-नीतिक दलो मे जातीय आधार पर अनेक गुट पाये जाते हैं जिनमे प्रतिस्पर्द्धा की भावना विद्यमान रहती है।

(3) **जातिगत आधार पर मतदान व्यवहार** (Caste-oriented voting behaviour)—भारत मे चुनाव अभियान मे जातिवाद को साधन के रूप मे अपनाया जाता है और प्रत्याशी जिस निर्वाचन क्षेत्र मे चुनाव लड रहा है उस निर्वाचन क्षेत्र मे जातिवाद की भावना को प्राय. उकसाया जाता है ताकि सम्बन्धित प्रत्याशी की जाति के मतदाताओ का पूर्ण समर्थन प्राप्त किया जा सके।

---

1 "In fact Mrs. Gandhi succeeded gradually in building the electoral coalition which brought her to power in 1971 Muslims, harijans, brahmins plus that 'Charisma' vote which should, better be called the "trust" vote"—Babu Lal Fadia *Pressure Groups in Indian Politics* (Radiant Publishers, New Delhi, 1980), Chapter 9.

जनवरी 1980 के चुनावो मे उत्तर प्रदेश और कुछ विहार के हिस्मो मे लोकदल की सफलता पिछड़ी जातियो की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं का प्रतीक है। उत्तर प्रदेश के चुनावो मे चरणसिंह की सफलता सदैव ही जाट जाति के मतो की एकजुटता पर निर्भर रही है। केरल के चुनावों मे साम्यवादी और मार्क्सवादी दलों ने भी वोट जुटाने के लिए सदैव जाति का सहारा लिया है।

(4) **मन्त्रिमण्डलों के निर्माण में जातिगत प्रतिनिधित्व** (Caste representation in the Ministry making)—राजनीतिक जीवन मे जातीयता का सिद्धान्त इतना गहरा धँस गया है कि राज्यों के मन्त्रिमण्डल मे प्रत्येक प्रमुख जाति का मन्त्री होना चाहिए। यह सिद्धान्त प्रान्तो की राजधानियो से ग्राम पंचायतो तक स्वीकृत हो गया कि प्रत्येक स्तर पर प्रधान जाति को प्रतिनिधित्व मिलना ही चाहिए। यहाँ तक कि केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल मे भी हरिजनो, जनजातियो, सिक्खो, मुसलमानो, ब्राह्मणो, जाटो, राजपूतों और कायस्थो को किसी न किसी रूप मे स्थान अवश्य दिया जाता है।

(5) **जातिगत दवाव समूह** (Caste as Pressure Groups)—**मेयर** के अनुसार, "जातीय सगठन राजनीतिक महत्त्व के दवाव समूह के रूप मे प्रवृत्त है।" जातिगत दवाव समूह अपने न्यस्त स्वार्थो एवं हितो की पूर्ति के लिए नीति-निर्माताओ को जिस ढंग से प्रभावित करने का प्रयत्न करते है उससे तो उनकी तुलना यूरोप और अमरीका मे पाये जाने वाले ऐच्छिक समुदायो से की जा सकती है।[1]

अनेक जातीय सगठन और समुदाय जैसे तमिलनाडु मे नाडार जाति संघ, गुजरात मे क्षत्रिय महासभा, विहार में कायस्थ सभा आदि राजनीतिक मामलो मे रुचि लेने लगते हैं और अपने-अपने सगठित वल के आधार पर राजनीतिक सौदेवाजी भी करते है। यद्यपि देश की सभी प्रमुख जातियो को इस प्रकार पूर्णतया संगठित नही किया जा सका है। मगर जो जातियाँ इस प्रकार संगठित नही हो सकी, वे राजनीतिक सौदेवाजी मे सफल नही रही और उनके सदस्यो को अपनी आवाज उठाने के लिए उपद्रव और तोड-फोड का सहारा लेना पडा।[2]

(6) **जाति एवं प्रशासन** (Caste and Administration)—लोकसभा और विधानसभाओ के लिए जातिगत आरक्षण की व्यवस्था प्रचलित है केन्द्र एवं राज्यों की सरकारी नौकरियो एव पदोन्नति के लिए जातिगत आरक्षण का प्रावधान है। मेडिकल एव इन्जीनियरिंग कॉलेजो मे विद्यार्थी की भर्ती हेतु आरक्षण के प्रावधान मौजूद हैं। चरणसिंह सरकार ने तो अल्पकाल में एक अध्यादेश के माध्यम से पिछडी जातियो के लिए केन्द्रीय सरकार की सेवा मे आरक्षण व्यवस्था घोषित करने की मंशा प्रकट की और इस सम्बन्ध मे सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को भी ताक मे रख दिया। यदि यह अध्यादेश लागू हो जाता तो मध्यम जातियो जैसे अहीर, यादव, कुर्मी आदि को भी आरक्षण के अवसर मिल जाते। ऐसा भी माना जाता है कि भारत मे स्थानीय स्तर के प्रशासनिक अधिकारी निर्णय लेते समय अथवा निर्णयो के क्रियान्वयन मे प्रधान और प्रतिष्ठित अथवा संगठित जातियो के नेताओ से प्रभावित हो जाते है।

---

1 "Thus Political articulation of Caste resembles many ways those of the European and American voluntacy association and interest groups for simple reason that caste association and group assume a Political Complexion when they turn to the state for productions and furtherance of interest." —J. C. Johari : *Ibid.*, p 73.

2 आश्चर्य नही कि पश्चिम वंगाल तथा वडे नगरो मे उपद्रव और तोड़-फोड की राजनीति का ज्यादा जोर रहा है. वनिस्पत् उन राज्यो के जहाँ जाति के आधार पर राजनीतिक गुट या गँठजोड वने हैं।

(7) **राज्य राजनीति मे जाति** (Caste in State Politics)—माईकेल ब्रेचर के अनुसार अखिल भारतीय राजनीति की अपेक्षा राज्य स्तर की राजनीति पर जातिवाद का प्रभाव अधिक है। यद्यपि किसी भी राज्य की राजनीति जातिगत प्रभावों से अछूती नही रही है तथापि बिहार, केरल, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा, राजस्थान और महाराष्ट्र राज्यो की राजनीति का अध्ययन तो बिना जातिगत गणित के विश्लेषण के कर ही नहीं सकते। बिहार की राजनीति मे राजपूत, ब्राह्मण, कायस्थ और जनजाति प्रमुख प्रतिस्पर्द्धी जातियाँ है। पृथक् झारखण्ड राज्य की माँग वस्तुत एक जातीय माँग ही रही है। केरल मे साम्यवादियो की सफलता का राज यही है कि उन्होने 'इजवाहा' जाति को अपने पीछे सगठित कर लिया। आन्ध्र प्रदेश की राजनीति काम्मा और रेड्डी जातियो के सघर्ष की कहानी है। काम्माओ ने साम्यवादी दल का समर्थन किया तो रेड्डी जाति ने काग्रेस दल का। महाराष्ट्र की राजनीति मे मराठो, ब्राह्मणो और महरो मे प्रतिस्पर्द्धा रही है। गुजरात की राजनीति मे दो ही जातियाँ प्रभावी हैं—पाटीदार और क्षत्रिय। केरल की राजनीति अपने तीन समुदायो के इर्द-गिर्द घूमती रही है—हिन्दू, क्रिश्चियन और मुसलमान। केरल की राजनीति मे अन्तिम दो प्रमुख राजनीतिक शक्तियो के रूप मे सक्रिय है। कहने को तो वहाँ सभी प्रकार के राजनीतिक दल हैं, किन्तु उन्हे ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पता चलेगा कि वे सब जातीय सगठन है। मुस्लिम लीग मुसलमानो की है, दोनो केरल काग्रेस के अधिसंख्य सदस्य ईसाई है। रा प्रा. सी. नायर लोगो की संस्था है। काग्रेस (इ) और दोनो साम्यवादी दलो मे एजवा जाति के अलावा हिन्दुओ के कुछ प्रमुख वर्गो का प्रभाव देखा जा सकता है। राजस्थान की राजनीति मे जाट-राजपूत जातियो की प्रतिस्पर्द्धा प्रमुख रही है। संक्षेप मे राज्यो की राजनीति मे 'जाति' का प्रभाव इतना अधिक प्रतीत हो रहा है कि टिंकर जैसे विद्वानो ने 'राज्यो की राजनीति' को 'जातियो की राजनीति' की सज्ञा दे डाली है।[1]

भारत मे राज्य राजनीति के कतिपय अध्ययनकर्ताओ के अनुसार विभिन्न राज्यो मे जाति के चार विभिन्न स्वरूप विकसित हुए है

(1) जातिवाद का **पहला स्वरूप** दक्षिणी भारत और विशेषकर तमिलनाडु मे मिलता है जहाँ ब्राह्मणो और अनेक निम्न जातियो के बीच गम्भीर संघर्ष रहा है। तमिलनाडु मे आरम्भ से ही राजनीति पर ब्राह्मणो का प्रभुत्व रहा और इसके विरुद्ध काफी दिनो से आन्दोलन चलता रहा जिसके परिणामस्वरूप रामास्वामी नायकर द्वारा द्राविड कडगम नामक सगठन की स्थापना की गयी जो बाद मे द्रविड़ मुनेत्र कड़गम दल के रूप मे विकसित हुआ। तमिलनाडु मे यह आन्दोलन ब्राह्मणो को उच्च स्थानो से हटाने के लिए था। सन् 1914 से यह ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन शुरू हुआ और 1916 मे एक पृथक् राजनीतिक दल 'जस्टिस पार्टी' के नाम से स्थापित हुआ जिसका उद्देश्य गैर ब्राह्मण जातियो के हितो को विकसित तथा सुरक्षित करना था। इस संगठन का उद्देश्य सरकार का समर्थन प्राप्त करके प्रशासन और स्थानीय निकायो यहाँ तक कि शिक्षा संस्थाओ मे गैर-ब्राह्मण जातियो के लिए स्थान सुरक्षित करना था। 1922 मे सरकार द्वारा लोक सेवाओ मे निर्धारित किये गये कोटे गैर-ब्राह्मण जातियो के लिए लगभग 42% और ब्राह्मण जाति के लिए 16% स्थान निर्धारित किये गये। इससे इस बात का सकेत मिलता है कि ब्रिटिश काल मे ही गैर-ब्राह्मण जातियाँ ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन मे बडी हद तक सफल हुई। 1949 मे यह आन्दोलन सी. एन अन्नादुराई के नेतृत्व मे डी. एम. के. के अधीन शुरू हुआ। ब्राह्मण विरोधी भावना के राजनीतिक महत्व को दृष्टि मे रखते हुए अन्य राजनीतिक दल भी जाति युद्ध मे

1 "..State Politics will be Caste Politics throughout most of India for many years to come" —*Tinker*

संलग्न रहे हैं। यहाँ तक कि काग्रेस पार्टी के द्वारा राजगोपालचारी (जो एक ब्राह्मण थे) के राजनीतिक प्रभाव को कम करने के लिए कामराज नाडार को राजनीति मे ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया गया। सक्षेप मे, स्वतन्त्रता से पहले और स्वतन्त्रता के वाद तमिलनाडु म ब्राह्मण और निम्न जातियो के बीच घोर टकराव रहा और इस सघर्ष में ब्राह्मणों को पराजित होना पडा।

(2) जातिवाद का **दूसरा रूप** महाराष्ट्र मे देखने को मिलता है। महाराष्ट्र की राजनीति तमिलनाडु से कुछ भिन्न रही है, यद्यपि यहाँ मराठा और ब्राह्मणो के बीच संघर्ष रहा और इस संघर्ष मे मराठा जाति ने ब्राह्मणो के शताब्दियो मे चले आने वाले प्रभुत्व का अन्त किया। बीसवीं शताब्दी की दूसरी चौथाई मे राजनीतिक दलों मे भी ब्राह्मणो का आधिपत्य था, उदाहरण के लिए तिलक, गोखले गोलवालकर एस. एन. डाँगे आदि ब्राह्मण थे। स्वतन्त्रता के वाद मराठा जाति ने ब्राह्मणो को पराजित कर दिया और यह आन्दोलन 1960 मे अपनी पूर्णता को पहुँच गया जव महाराष्ट्र नामक एक पृथक् राज्य की स्थापना की गयी और मराठा जाति को राजनीति मे पूर्ण प्रधानता प्राप्त हुई। इस नये महाराष्ट्र राज्य मे मराठा जाति की सख्या 45% थी। **ए. जे. दस्तूर** के शब्दो मे, "जिस दिन महाराष्ट्र का निर्माण हुआ उस दिन से इस राज्य के राजनीतिक विशिष्ट वर्ग और राजनीतिक नेतृत्व मे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण और मौलिक परिवर्तन हुए। सत्ता प्रभाव और शक्ति ब्राह्मणो के हाथो से निकलकर मराठो के हाथो मे पहुँच गयी।"

(3) गुजरात, आन्ध्र और कर्नाटक जातिवाद का **तीसरा प्रतिनिधि रूप** प्रस्तुत करता है। इन तीनों ही राज्यो मे तीन मध्यमवर्गीय जातियाँ राजनीतिक संघर्ष मे रत दिखायी देती हैं। आन्ध्र मे यह टकराव कम्मा और रेड्डी जातियो के बीच पाया जाता है। 1934 मे आन्ध्र मे साम्यवादी दल की स्थापना के वाद से इस दल का नेतृत्व कम्मा जाति के हाथो मे रहा जबकि काग्रेस पार्टी मे रेड्डी जाति का प्रभुत्व रहा। कर्नाटक मे यह विरोध लिंगायत तथा ओकोलीगा जातियो के बीच पाया जाता है। गुजरात मे पाटीदार और क्षत्रिय जातियो के बीच प्रतिस्पर्द्धा पायी जाती है। इन तीनों राज्यो (आन्ध्र, कर्नाटक और गुजरात) मे यह विशेषताएँ दिखायी देती हैं कि इन राज्यो मे राजनीतिक क्षेत्र में केवल दो जातियो का प्रभुत्व है जो अपनी प्रथाओ, सामाजिक स्थिति और सामाजिक-आर्थिक साधनो की दृष्टि से एक-दूसरे से वहुत मिलती-जुलती है। दूसरे शब्दों मे तमिलनाडु और महाराष्ट्र मे जहाँ असमान जातियो के बीच टकराव पाया जाता है, वहाँ इन राज्यो मे, यह प्रतिस्पर्द्धा लगभग दो समान जातियो के बीच पायी जाती है।

(4) **विहार की स्थिति उपरोक्त** राज्यो से भिन्न है। यहाँ उच्च जातियो-ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और कायस्थ अव भी सामाजिक और राजनीतिक शक्तियों के धारक हैं और उनके बीच राजनीतिक प्रतियोगिता पायी जाती है। निम्न जातियाँ अव भी पिछडी स्थिति मे है। राजस्थान और मध्य प्रदेश मे भी राजनीति पर उच्च जातियो का एकाधिकार है और निम्न जातियाँ उभरने का प्रयत्न कर रही हैं। अत इन राज्यो मे राजनीतिक प्रतियोगिता उच्च जाति के बीच है और कोई भी एक जाति अपने प्रभुत्व को स्थापित करने की स्थिति मे नहीं है।

जाति की भूमिका : वरदान या अभिशाप
(THE ROLE OF CASTE BLESSING OR A CURSE)

भारतीय राजनीति मे जाति की भूमिका का मूल्याकन करना अत्यन्त कठिन कार्य है। कई लोग जाति को राजनीति का केन्सर मानते है। जाति प्रथा को राष्ट्रीय एकता के मार्ग मे वाधक माना जाता है क्योकि इससे व्यक्तियो मे पृथकतावाद की भावना जाग्रत होती है। राष्ट्रीय हितो की अपेक्षा अपने जातिगत हितों को अधिक महत्त्व देने लगते है। जाति निष्ठाओ का सृजन कर यह प्रथा लोकतन्त्र के विकास मार्ग को अवरुद्ध कर देती है। डी. आर. गाडगिल के अनुसार,

क्षेत्रीय दबावों से कहीं ज्यादा खतरनाक बात यह है कि वर्तमान काल में जाति व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बाँधने में बाधक सिद्ध हुई।' प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम. एन. श्रीनिवास का स्पष्ट मत है कि परम्परावादी जाति व्यवस्था ने प्रगतिशील और आधुनिक राजनीतिक व्यवस्था को इस तरह प्रभावित किया है कि ये राजनीतिक संस्थाएँ अपने मूलरूप में कार्य करने में समर्थ नहीं रही हैं।

दूसरी तरफ अमरीकी लेखकों **रूडाल्फ एण्ड रूडाल्फ** का मत है कि जाति व्यवस्था ने जातियों के राजनीतिकरण में सहयोग देकर परम्परावादी व्यवस्था को आधुनिकता में ढालने के साँचे का कार्य किया है। वे लिखते हैं, 'अपने परिवर्तित रूप में जाति व्यवस्था ने भारत में कृषक समाज में प्रतिनिधिक लोकतन्त्र की सफलता तथा भारतीयों की आपसी दूरी कम करके, उन्हें अधिक समान बनाकर समानता के विकास में सहायता दी है।'[1]

संक्षेप में, चाहे जाति आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधक न हो तथापि राजनीति में जाति का हस्तक्षेप लोकतन्त्र की धारणा के प्रतिकूल है। जातिवाद देश, समाज और राजनीति के लिए बाधक है। विविधता की सीमाएँ होती हैं। इस देश में इतनी जातियाँ, उपजातियाँ तथा सह-जातियाँ पैदा हो गयी हैं कि वे एक-दूसरे से पृथक् रहने में ही अपने-अपने अस्तित्व की रक्षा समझती हैं। यह पृथकतावादी दृष्टि राष्ट्रीय एकता के लिए अत्यधिक घातक है।

---

1 लायड आई. रूडाल्फ एण्ड एस. हावर रूडाल्फ, **दि माडर्निटी ऑफ ट्रेडीशन** (ओरियण्ट लाग-मैन 1969), पृ. 11।